

धार्मिक स्कूलों के बारे में एक दार्शनिक आपत्ति

माइकेल हैण्ड

स्कूलों में धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए अथवा नहीं ? यदि दी जाए तो उसका स्वरूप क्या हो ? क्या स्कूलों में धर्म की शिक्षा आलोचनात्मक चिंतन के दायरे में रहते हुए दी जा सकती है ? यदि नहीं तो इसके लिए तर्क क्या हैं ? माइकेल हैण्ड धार्मिक स्कूलों को बंद करने के प्रबल पक्षधर हैं। इसके लिए वे इस लेख में तर्क देते हैं कि धार्मिक स्कूलों में धार्मिक विश्वासों की शिक्षा दी जाती है। धार्मिक प्रतिज्ञापितियों की सत्यता को जांचा नहीं जा सकता। अतः इस प्रकार की शिक्षा मतारोपण है। वे कहते हैं कि धार्मिक विश्वास निष्ठा का विषय हैं न कि ज्ञान का। हम आमतौर पर किसी व्यक्ति की मान्यता को तब ज्ञान मानते हैं जब उन्हें तर्कसंगत ढंग से परखा गया हो और वे प्रमाण अकाट्य हों और सभी तर्कशील लोगों द्वारा स्वीकृत हों। अतः जिन प्रतिज्ञापितियों की सत्यता को नहीं जांचा जा सकता, उनकी शिक्षा स्कूलों में देना मतारोपण है और यह नहीं दी जा सकती। यह लेख तर्कशास्त्र की शैली में अपनी मान्यताओं को रखते और परखते हुए तर्कसंगत तरीके से अपनी बात कहता है।

धार्मिक स्कूलों के बारे में आपत्ति का सबसे बड़ा पहलू जो आजकल चर्चा में है वह यह है कि ये स्कूल सामाजिक विभाजन और धार्मिक असहिष्णुता को बढ़ावा देते हैं। यह जाहिर नहीं है कि धार्मिक स्कूलों की शिक्षा का यही असर होता है, लेकिन अगर ऐसा होता है तो यह पूरी तरह से आकस्मिक है। क्योंकि धार्मिक स्कूलों के उद्देश्यों में सामाजिक विभाजन और धार्मिक असहिष्णुता कभी भी शामिल नहीं रही और न ही उनके किसी अन्य उद्देश्य की प्राप्ति में निहित रही है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह धार्मिक स्कूलों के प्रति कोई सटीक आपत्ति नहीं है। लेकिन अगर यह जाहिर हो कि धार्मिक स्कूल ऐसी युवा पीढ़ी पैदा करते हैं जो अपने धार्मिक समुदाय के हितों से बहुत कम मतलब रखते हैं, लेकिन अन्य मतों के प्रति एक प्रतिकूल धारणा रखते हैं। यह अपने आप में धार्मिक स्कूलों के सुधार का एक कारण बनता है। इसका मतलब हुआ कि ऐसे धार्मिक स्कूलों के चलने में कोई हानी नहीं है जो सामाजिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देते हों। सचमुच ऐसा हो सकता है लेकिन वर्तमान ब्रिटेन में ऐसा स्कूल खोज पाना मुश्किल है जो इन उद्देश्यों की पूर्ति करता हो।

लेकिन धार्मिक स्कूलों के प्रति एक और आपत्ति है जो अगर सच है तो काफी खतरनाक है। वह यह है कि धार्मिक स्कूल लोगों को एक खास किस्म की शिक्षा देते हैं (जो किन्हीं विश्वासों पर आधारित होती है)। सैद्धांतिक तौर पर धार्मिक स्कूल धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देते हैं और उनका यही काम उनके सिर पर मतारोपण (इन्डॉक्ट्रिनेशन) का आरोप मढ़ता है। और अगर यह आरोप सही है तो

लेखक परिचय :

यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन,
इंग्लैण्ड में प्राध्यापक।

अनुवाद :

अपर्णा

किसी तरह के सुधार से इस समस्या का हल संभव नहीं है। और अगर धार्मिक शिक्षा देना ही ऐन वह चीज है जो उसे अन्य साधारण स्कूल से अलगता है तो धार्मिक स्कूलों से अपने उद्देश्य को छोड़ देने के लिए कहना उन्हें समाप्त करने के समान होगा।

क्या यह कहना सही होगा कि धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देना मतारोपण है ? इस आपत्ति के अहलेकार ऐसा ही मानते हैं क्योंकि उनका मानना है कि धार्मिक विश्वास विवादास्पद हैं और सच नहीं माने जाते। इनका दावा है कि ऐसे विश्वासों को, जिनके सच का पता नहीं, बिना किसी तर्क के बताए जाते हैं और यही वह चीज है जिसे मतारोपण कहते हैं। यह एक अनिश्चित-सा तथ्य है कि धार्मिक विश्वास सच नहीं माने जाते, बावजूद इसके यह माना जाता है कि धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देना मतारोपण है।

धार्मिक स्कूलों के प्रति इस आपत्ति को निगमनात्मक रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. धार्मिक स्कूल धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों (प्रेपोजीशन्स) में विश्वास पैदा करने के लिए पढ़ाते हैं।
2. कोई भी धार्मिक प्रतिज्ञप्ति सत्य नहीं मानी जाती।
3. सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देना मतारोपण है।

इसलिए

4. धार्मिक स्कूल मतारोपण करते हैं।

इस लेख में मेरा ध्येय इस तर्क की प्रामाणिकता को जांचना है। जब यह स्पष्ट हो कि परिणाम मूल धारणा पर आधारित है तो तर्क के खण्डन के लिए जरूरी है कि कम से कम एक मूल धारणा को असत्य सिद्ध किया जाए। मैं हर धारणा को क्रम से जांचते हुए आगे बढ़ूंगा।

धार्मिक स्कूल धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों में विश्वास पैदा करने के लिए पढ़ाते हैं

मैंने कहा है कि धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देने की गतिविधि धार्मिक स्कूलों की मूल अवधारणा का हिस्सा है। धार्मिक स्कूल आमतौर पर सामान्य स्कूलों की तरह ही शिक्षा देते हैं और बच्चों को जीवन के सभी तरह के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए तैयार करते हैं लेकिन साथ में धार्मिक विश्वासों और मूल्यों का एक खास पुलिंदा भी बच्चों को देते हैं। और यही धार्मिक मिशन उनको धार्मिक स्कूल के रूप में विशिष्ट बनाता है। किसी स्कूल को धार्मिक स्कूल मानने के लिए जरूरी है कि यह माना जाए कि वहां पर बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी जा रही है।

हो सकता है कि यहां पर हमने कुछ ज्यादा सपाट बयानी कर दी हो। और इसमें संदेह नहीं कि धार्मिक स्कूल के नाम से जानी जाने वाली यह अवधारणा कुछ अस्पष्ट सी है जैसा कि विटगेंस्टाइन ने कहा है कि इसकी चौहद्दी अभी तय नहीं है। (विटगेंस्टाइन, 1953) जिन स्कूलों को हम अभी धार्मिक स्कूल कह रहे हैं, वे अगर अचानक अपने धार्मिक मिशन को छोड़ दें, तब भी हम अपने तर्क छोड़ने के बजाय, उन पर इस आधार पर लागू करेंगे कि उनकी कार्यकारिणी समितियां कुछ विशिष्ट हैं। और निश्चित तौर पर यह हमारी वर्तमान तर्क सरणी से पलायन नहीं होगा। लेकिन इसका यह निष्कर्ष निकालना भी ठीक नहीं होगा कि धार्मिक शिक्षा का संबंध संयोगवश धार्मिक स्कूलों से ही है। विटगेंस्टाइन के एक और रूपक को काम में लेकर कहें कि अगर धार्मिक स्कूलों के काम को एक धागा मान लें तो स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि उसका सबसे लम्बा रेशा धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देना है। धार्मिक स्कूलों के काम को वैधानिक ठहराने के लिए जो तर्क दिए जाते हैं, वे असल में इस लक्ष्य के पक्ष में दिए गए तर्क हैं। जब माता - पिता बच्चों को धार्मिक स्कूल में भेजने का फैसला करते हैं तो इसलिए कि वे स्कूल उनकी धार्मिक मान्यता के अनुकूल हैं, न कि इसलिए कि वे स्कूल उनके घर के नजदीक हैं या अकादमिक दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं। वे बच्चों को इन स्कूलों में भेजते हैं तो महज इसलिए कि वे चाहते हैं कि उनके बच्चों को जो शिक्षा मिले, उसमें धार्मिक तत्व भी हों।

धार्मिक स्कूलों के पैरोकार अक्सर ये कहते पाए जाते हैं कि धार्मिक स्कूलों के बारे में आमजन में फैली गलतफहमी से उनके उद्देश्य को काफी नुकसान हुआ है। मिसाल के तौर पर, अभी हाल ही में 60 कैथोलिक सेकेण्डरी स्कूलों का अध्ययन करने वाले गेरॉल्ड ग्रेस का मानना है कि शैक्षिक विमर्श में कैथोलिक शिक्षा को हाशिए पर समेट देने में कैथोलिक स्कूलों की उस पुरानी पारंपरिक छवि का बड़ा हाथ है जो शिक्षा प्रक्रिया को महज शिक्षा प्रक्रिया न मानकर प्रभुसत्तावादी मतारोपण मानती थी। वे मानते हैं कि इस तरह की छवियां जनमानस में इसलिए हैं क्योंकि अन्तोनिया व्हाइट, जेम्स ज्वायस और फ्रैंक मेक्कार्ट जैसे कई लेखकों के लेखन में कैथोलिक स्कूलों की नकारात्मक छवियां बड़ी सशक्त रूप से आई हैं। बेशक हम मान सकते हैं कि आज के धार्मिक स्कूल इन लेखकों के लेखन में आई छवियों से कई मायनों में भिन्न हैं, लेकिन ये छवियां धार्मिक स्कूलों के मूल उद्देश्य यानी धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देने से एकदम अलग नहीं हैं। ग्रेस इस बात का उल्लेख भी करते हैं कि धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देना कैथोलिक स्कूलों की प्राणवायु है; और साथ ही यह भी कहते हैं कि 'जैसा कि अपेक्षित था, सभी 60 स्कूलों के बयानों में

कैथोलिक शिक्षा के मामले में उनके बयान दो टूक थे।’

अगर इस आधारभूत तथ्य को मानें कि धार्मिक स्कूल धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों के लिए ही शिक्षा देते हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि ये स्कूल कम से कम कुछ छात्रों को सायास रूप से धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देते हैं। यहां यह दावा नहीं किया जा रहा कि ये प्रयास सफल हैं या सभी शिक्षक इसमें शामिल हैं या सभी बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जा रही है। अगर मूल धारणा में इन दावों के बारे में कुछ सुराग हैं तो इसके बारे में कुछ कहना जरूरी हो जाता है।

पहली बात ये कि यह सही है कि बहुत से छात्र धार्मिक स्कूलों को धार्मिक विश्वासों को ग्रहण किए बिना ही स्कूल छोड़ देते हैं। इसको धार्मिक मिशन की निराशाजनक असफलता के रूप में देख सकते हैं या इसे बच्चों के बौद्धिक लचीलेपन का एक सबूत मान सकते हैं। फिर भी यह बात इस दावे के विरोध में नहीं जाती कि धार्मिक स्कूल धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देते हैं। यहां ‘शिक्षा देना’ एक ध्येय क्रिया के रूप में प्रयुक्त हुआ है न कि उपलब्धि क्रिया के रूप में। अगर यह कहा जाए कि बच्चे को कुछ शिक्षा दी गई है तो ये बिल्कुल नहीं कहा जा रहा है कि बच्चे ने कुछ सीख भी लिया है।

दूसरे, ऐसा नहीं है कि धार्मिक स्कूलों के सभी शिक्षक धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देने में लगे हुए हैं। धार्मिक स्कूलों में अब ऐसे शिक्षक नियुक्त किए जा रहे हैं जो धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देना नकार देते हैं। ऐसा दो वजहों से हो सकता है। एक यह कि वे शिक्षक खुद उन धार्मिक विश्वासों को मानने वाले न हों जिसकी शिक्षा स्कूल देता है और दूसरे, यह शिक्षक बच्चों को धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देने में किसी शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति होती हुई न देखते हों। बावजूद इसके कि धार्मिक स्कूलों के सभी शिक्षक इनके धार्मिक मिशन में शामिल नहीं हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसे किसी मिशन का वजूद ही नहीं है।

तीसरे, यह जरूरी नहीं कि धार्मिक शिक्षा सभी छात्रों को दी जाए, धार्मिक स्कूल कुछ स्थितियों में तो चुनिंदा छात्रों को धार्मिक

मिशन से दूर ही रखते हैं और ऐसा उन धार्मिक स्कूलों में ज्यादा होता है, जहां अलग-अलग धार्मिक समुदाय के छात्र आते हैं। ऐसे में एक स्थिति तो यह हो सकती है कि स्कूल धार्मिक शिक्षा के लिए उन बच्चों को ही चुने जिनके माता-पिता भी उसी धार्मिक समुदाय के हों, और वे स्कूल द्वारा दी जा रही धार्मिक शिक्षा का समर्थन करते हों। दूसरी स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है जिसमें कि स्कूल उन बच्चों को धार्मिक शिक्षा दे, जिनके माता-पिता अपने बच्चों को किसी अन्य धर्म की ही शिक्षा दे रहे हों। धार्मिक स्कूल अपने मिशन के लिए छात्रों का इसी आधार पर वर्गीकरण करते हैं और पहली स्थिति के ही पक्ष में रहते हैं।

और अगर ऐसी कुछ प्रतिज्ञप्तियां होती ही हैं जिन्हें सत्यापित नहीं किया जा सकता, तो शिक्षा के संदर्भ में उनको बरतने का तरीका भी कुछ अलग होगा। इस आधार पर, अगर ऐसे धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देने पर कोई आपत्ति है जो सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों पर आधारित हैं तो ये आपत्ति तो उन प्रतिज्ञप्तियों पर भी उसी तरह लागू होगी जिन्हें सत्यापित नहीं किया गया है या जिन्हें सत्यापित नहीं किया जा सकता। यह तथ्य (अगर इसे तथ्य मानें तो) कि धार्मिक विश्वास ‘ज्ञान’ कहलाने के लायक भी नहीं हैं, अपने आप में पर्याप्त कारण है कि इनकी शिक्षा स्कूलों में नहीं दी जानी चाहिए।

कुछ इसी तरह का अलगाव ‘अ वे अहेड’ नामक रिपोर्ट में मिलता है जो चर्च स्कूल रिव्यू ग्रुप द्वारा हाल ही में प्रकाशित हुई है। यह रिपोर्ट इंग्लैण्ड के चर्च के स्कूलों में धार्मिक शिक्षा की पुष्टि करती है। लेकिन साथ ही इस बात का भी उल्लेख करता है कि कई चर्च स्कूल बड़ी संख्या में अन्य धार्मिक पृष्ठभूमि के छात्रों का दाखिला लेते हैं। यह रिपोर्ट स्पष्ट रूप से कहती है कि चर्च स्कूल सक्रिय रूप से उनके धर्म परिवर्तन का कोई प्रयास नहीं करते। रोचक है कि इस रिपोर्ट के लेखकों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण भी कम विरोधाभासी नहीं है। वे कहते हैं कि अन्य धार्मिक समुदाय के छात्र भी ईसाईयों के इस अनुभव को शेयर करने लगते हैं कि जीवन में और उसके बाद भी जो सबसे ताकतवर सत्ता है, वह है अहेतुक प्रेम।

यह एक तथ्य है कि कुछ धार्मिक स्कूल केवल उन्हीं छात्रों को धार्मिक विश्वास की शिक्षा देते हैं जिनके

माता-पिता भी उन्हीं धार्मिक विश्वासों को मानते हैं। इस तथ्य से भी उस दावे में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती जिसमें कहा गया था कि धार्मिक स्कूल धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों में विश्वास पैदा करने के लिए शिक्षा देते हैं। मेरा तर्क यह था कि यह दावा न केवल सही है बल्कि अपरिहार्य रूप से सही है। अंत में मैं यह कहना चाहूंगा कि धार्मिक स्कूलों के खिलाफ हमारे तर्क का पहला आधार अभी मान्य माना जाए।

कोई भी धार्मिक प्रतिज्ञप्ति सत्य नहीं मानी जाती

हमारा दूसरा दावा है कि कोई भी धार्मिक प्रतिज्ञप्ति सच नहीं होती। मैं इसे संभाव्य सत्य ही मानकर चलूंगा न कि अपरिहार्य रूप से सत्य मानकर। हम एक ऐसी दुनिया की कल्पना कर सकते हैं जिसमें एक प्रकार की धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों को निर्णायक रूप से सत्य मान लिया गया हो। (मिसाल के तौर पर वह दुनिया, जिसमें जीसस क्राइस्ट जीवित और मृत लोगों का फैसला करने आते हैं।) लेकिन वर्तमान में हम ऐसी दुनिया में नहीं रहते हैं। बहरहाल धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता और असत्यता तर्कशील लोगों के बीच विवाद का विषय है। जो प्रमाण मौजूद हैं, वे भ्रामक हैं। बहुत से लोगों ने इस बारे में अपने निर्णय स्थगित कर रखे हैं। उन्हें उस समय का इंतजार है, जब अन्य प्रमाण मिल सकेंगे।

धार्मिक विश्वास निष्ठा का विषय है न कि ज्ञान का। हम आमतौर पर किसी व्यक्ति की मान्यता को तब ज्ञान मानते हैं जब उन्हें तर्कसंगत ढंग से परखा गया हो और जब वे प्रमाण अकाट्य हों और अन्य सभी तर्कशील लोगों द्वारा स्वीकृत हों। हम किसी व्यक्ति की मान्यता को तब निष्ठा मानते हैं जब वह मान्यता किन्हीं प्रमाणों से परे हो या किसी ऐसे पाठ पर आधारित हो जिससे अन्य लोग इत्तफाक नहीं रखते। अगर सीधे-सीधे कहें, तो वर्तमान में ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे धार्मिक ज्ञान कहा जाए। अगर धार्मिक विश्वासों को माना जा सकता है तो सिर्फ निष्ठा के बूते पर।

इस दावे को झुठलाने के लिए जरूरी है कि बताया जाए कि कुछ धार्मिक दावे ऐसे भी हैं जिनके कुछ निर्णायक प्रमाण हैं और धार्मिक विचारों के इतिहास में इस तरह के प्रयासों की भरमार है। ईसाई धर्मवेत्ताओं में महान संत एक्वीनस का प्रसिद्ध तर्क है कि ईश्वर की उपस्थिति को प्रमाणित करने के पांच तरीके हैं। अगर इनमें से कोई भी प्रमाण सफल होता है तो इस प्रमाण के आधार पर ईश्वर को मानने वाले व्यक्ति के बारे में कहा जा सकता है कि वह धार्मिक ज्ञान के वश में है। वास्तव में, इस दिशा में कोई प्रयास नहीं हुआ कि धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों को तार्किकता की कसौटी पर कसा जाए। सभी धार्मिक प्रमाणों में जबरदस्त गड़बड़ियां हैं। ऐसा ही आत्मा की अमरता के प्रमाणों में भी है। कहना न होगा कि इस तरह की दलीलों में तार्किकता नदारद रहती है यानी ये दलीलें तार्किक रूप से निर्णायक नहीं होती और इसलिए कोई प्रमाण नहीं बन पाती। हो सकता है कि कोई तर्कशील व्यक्ति इन दलीलों को पूरी तरह समझे, फिर भी उन धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों को नकार दे, जिनके समर्थन में ये दलीलें दी गई थीं।

इस दावे के विरोधी जो तरीका कभी-कभार काम में लेते हैं, वह इस दावे को झुठला तो नहीं पाते लेकिन तर्क जरूर देते हैं कि

ये दावा बेकार और भ्रामक है। वे कहते हैं कि जब ये कहना पूरी तरह सत्य नहीं है कि कोई भी धार्मिक प्रतिज्ञप्ति सत्य नहीं मानी जाती, तो बात को इस प्रकार प्रस्तुत करना धार्मिक विमर्श को गलत ढंग से समझना होगा। जो लोग इस तरह से सोचते हैं आमतौर पर इन दो में से एक रास्ता अपनाते हैं। एक यह कि धार्मिक प्रतिज्ञप्तियां सिद्धांत रूप में सत्यापित नहीं की जा सकतीं और इसलिए उन्हें उन प्रतिज्ञप्तियों के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता जिन्हें सत्यापित किया जा सकता है। दूसरे यह कि बहुत-सी धार्मिक अभिव्यक्तियां अपने स्वरूप में प्रतिज्ञप्तियों की तरह ही लगती हैं लेकिन वे धार्मिक विमर्श में प्रतिज्ञप्ति के रूप में प्रयुक्त नहीं होतीं और इसलिए उनकी सत्यता की जांच बेमानी है।

जो लोग यह मानते हैं कि धार्मिक प्रतिज्ञप्तियां सिद्धांत रूप में सत्यापित नहीं की जा सकतीं, उन्हें अपने कथन को समझने लायक बनाने में मुश्किल आती है। अगर कोई व्यक्ति परिस्थितियों के इस भेद को न समझ पाए कि किन्हीं परिस्थितियों में कोई प्रकथन सत्य हो सकता है और किन्हीं परिस्थितियों में वही प्रकथन असत्य हो सकता है, तो उस व्यक्ति के लिए तो उस प्रकथन के कोई मायने ही नहीं होंगे। किसी प्रतिज्ञप्ति के लिए जरूरी है कि उसके समर्थन या विरोध में कोई प्रमाण हो और वह प्रमाण इस पार या उस पार की तर्ज पर कोई तार्किक निष्पत्ति करे। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी बहुत-सी प्रतिज्ञप्तियां होंगी जिनको सत्य या असत्य सिद्ध करने के लिए हम कभी भी पर्याप्त प्रमाण नहीं जुटा पाएंगे। लेकिन प्रतिज्ञप्ति की ऐसी धारणा बड़ी अस्पष्ट होगी जिसे सिद्धांत रूप से सत्यापित न किया जा सके।

और अगर ऐसी कुछ प्रतिज्ञप्तियां होती ही हैं जिन्हें सत्यापित नहीं किया जा सकता, तो शिक्षा के संदर्भ में उनको बरतने का तरीका भी कुछ अलग होगा। इस आधार पर, अगर ऐसे धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देने पर कोई आपत्ति है जो सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों पर आधारित हैं तो ये आपत्ति तो उन प्रतिज्ञप्तियों पर भी उसी तरह लागू होंगी जिन्हें सत्यापित नहीं किया गया है या जिन्हें सत्यापित नहीं किया जा सकता। यह तथ्य (अगर इसे तथ्य मानें तो) कि धार्मिक विश्वास 'ज्ञान' कहलाने के लायक भी नहीं हैं, अपने आप में पर्याप्त कारण है कि इनकी शिक्षा स्कूलों में नहीं दी जानी चाहिए।

'धार्मिक अभिव्यक्तियां अपने स्वरूप में तो प्रतिज्ञप्ति होती हैं लेकिन क्रियात्मक रूप में नहीं', यह दावा कुछ समझ में आने वाला है। दरअसल यहां कहा यह जा रहा है कि अगर कोई व्यक्ति धार्मिक अभिव्यक्ति कर रहा है तो वह कोई दावा नहीं कर रहा बल्कि कुछ भावनाएं व्यक्त कर रहा है या किसी खास तरह की व्यवहार नीति

को इंगित कर रहा है। अब अगर यह पूछा जाए कि ये धार्मिक अभिव्यक्ति सत्य या असत्य है तो हम प्रसंग से हट जाएंगे। बच्चों को धार्मिक विश्वासों की शिक्षा देने में मुद्दा यह नहीं है कि आप उन्हें किन्हीं धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों का कायल बना रहे हैं बल्कि आप उन्हें एक ऐसी भाषा मुहैया करा रहे हैं जिसमें वे खुद को अभिव्यक्त करें। अगर धार्मिक विश्वासों के बारे में यह बात सही है तो यह साबित होता है कि धार्मिक स्कूलों के विरुद्ध हमारे तर्क में कुछ आधारभूत गड़बड़ी है। लेकिन मैं यहां स्पष्ट करना चाहूंगा कि यह बात सही नहीं है। धार्मिक विश्वासों के असंज्ञानात्मक सिद्धान्तों का कोई भी पैरोकार धार्मिक विश्वासों को रत्ती भर भी युक्तियुक्त नहीं बना सका है और इसका सामान्य-सा कारण यह है कि जो लोग इन धार्मिक विश्वासों को मानते हैं, उनके लिए ये अनभिज्ञेय हैं।

इस तरह धार्मिक प्रतिज्ञप्तियां वस्तुतः प्रतिज्ञप्तियां हैं और सिद्धान्ततः सत्यापित की जा सकती हैं। मोटेतौर पर हमें पता है कि इन्हें सत्यापित करने के लिए कौन से प्रमाण चाहिए और हम यह भी जानते हैं कि जो प्रमाण अभी हमारे पास हैं वे अपर्याप्त हैं। इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि धार्मिक विश्वास अतार्किक होते हैं, लेकिन यह मतलब जरूर है कि कोई भी धार्मिक विश्वास ज्ञान नहीं है।

सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देना मतारोपण है

अब हम अपने तीसरे और अंतिम आधार वाक्य की बात करेंगे। इसमें हमने कहा था कि सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देना मतारोपण है। इस संबंध में हम तीन मुद्दों पर बात करेंगे (1) इस आधार वाक्य के समर्थन में एक पुख्ता दार्शनिक तर्क है। (2) फिर भी इस आधार वाक्य पर दो खतरनाक आपत्तियां हैं। (3) इन दो आपत्तियों के मद्देनजर धार्मिक स्कूल के विरुद्ध अपने तर्कों को हम पुनःसृजित कर सकते हैं।

तो हम इस आधार वाक्य के समर्थन में जो तर्क हैं, उनसे बात शुरू करते हैं। ये एक ऐसा तर्क है जिसे शिक्षा के दर्शनशास्त्री बरसों से देते आए हैं। 1972 में आई ए स्नूक लिखते हैं- 'ईसाई धर्म के सभी समुदायों के शिक्षकों से उम्मीद की जाती है कि वे कुछ निश्चित प्रतिज्ञप्तियों में ही शिक्षा दें। दरअसल ये प्रतिज्ञप्तियां हर समुदाय में अलग-अलग होती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस तरह की शिक्षा मतारोपण है क्योंकि प्रतिज्ञप्ति चाहे कोई भी क्यों न हो, उसका प्रमाण निर्णायक नहीं होगा। क्योंकि अन्य सक्षम सत्ताएं (इतर समुदायों की) उसको नकार देंगी। इस तरह से सभी धार्मिक प्रतिज्ञप्तियां संदेहास्पद हैं और उनके माध्यम से शिक्षा देना मतारोपण है।'

इस तर्क का आधार यह है कि किसी विवादित प्रतिज्ञप्ति का

प्रमाण होना किसी को उस पर विश्वास करने के लिए बाध्य करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है। शिक्षक किसी विवादित प्रतिज्ञप्ति को अपने छात्रों को पढ़ाते समय महज उसके लिए प्रमाण नहीं जुटाता (क्योंकि वह प्रमाण भी निर्णायक नहीं होता), बल्कि इससे कहीं ज्यादा करने की कोशिश करता है। वह छात्रों की तर्कशक्ति को प्रभावित करके उन्हें सहमत नहीं करता, बल्कि उनकी तर्कशक्ति से इतर वह सब कुछ करने की कोशिश करता है जिससे छात्र किसी आस्था विशेष के प्रति अपना विश्वास जमा पाएं। इसमें मनोविज्ञान के प्रयोग से लेकर उन्हें लुभाने और डराने के प्रयास शामिल हैं। ये विश्वास छात्रों के मन में इस तरह से जमाए जाते हैं कि वे अतार्किक और अप्रामाणिक लगने लगते हैं। और यही मतारोपण है।

मतारोपण को एक बड़ी बुराई माना जाता है क्योंकि व्यक्ति अपने विश्वासों को बदलने के क्रम में अतार्किक हो जाता है। जब तक व्यक्ति अपने विश्वासों को किन्हीं प्रमाणों के आधार पर मानता रहता है, तब तक वह उनमें सुधार और उनके पुनरावलोकन के लिए तैयार रहता है। वह नये प्रमाणों (या पुराने प्रमाणों की नई अर्थवत्ता) के आधार पर उनमें बदलाव करने और यहां तक कि उन्हें त्यागने के लिए भी तैयार रहता है। दूसरी ओर जब किसी व्यक्ति के विश्वास बिना किसी प्रमाण के होते हैं, तो वे उनका किसी तार्किक आधार पर विश्लेषण करने से कतराते हैं। और क्योंकि वे विश्वास किसी प्रमाण पर आधारित नहीं होते, इसलिए किसी प्रतिकार का उन पर कोई असर नहीं होता। जॉन विल्सन ने बच्चे के मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव को बताया है:- बच्चों के व्यक्तित्व के एक केन्द्रीय तत्त्व, उसके मस्तिष्क पर कब्जा कर लिया है या कहीं कि उनकी तार्किक ढंग से सोचने की क्षमता को सुला दिया है। किन्हीं मुद्दों के बारे में उनकी तार्किक ढंग से सोचने की क्षमता पर कुठाराघात किया गया है। थोड़ा साहित्यिक होकर कहें तो जब तक हम सोचने के लिए स्वतंत्र हैं, हमारे व्यवहार को कितना भी दबाया जाए या हमारी भावनाओं का जितना भी अनुकूलन किया जाए, एक उम्मीद बाकी रहती है। लेकिन अगर कोई हमारे विचार और भाषा के गढ़ पर कब्जा कर ले, तो उसके लिए अपनी तार्किकता को वापस पाना काफी मुश्किल होगा और ऐसा सिर्फ एक लम्बे श्रमसाध्य इलाज के बाद ही संभव है।'

विल्सन का तर्क काफी मजबूत है। किन्हीं विवादित प्रतिज्ञप्तियों को जब किसी व्यक्ति को तर्क द्वारा नहीं मनवाया जा सकता हो तो जो रास्ता बचता है वह है तर्क से परे जाना, जिसका मतलब होगा मतारोपण। मुझे लगता है कि धार्मिक स्कूलों के साथ जो दिक्कत है उसकी जड़ यही है। अगर ऐसा है, तो अपनी वर्तमान स्थिति में हमारा तीसरा आधार वाक्य असत्य है। तब इतना कहना काफी

नहीं कि सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देना मतारोपण है। और इसके दो कारण हैं। आगे मैं उन दो आपत्तियों पर बात करते हुए अपने आधार वाक्य को पुनःसृजित करने और धार्मिक स्कूलों के खिलाफ तर्क तैयार करने का प्रयास करूंगा।

पहली आपत्ति यह है कि इस तार्किक भेद के आधार पर किसी भी शिक्षण को अपरिहार्य रूप से मतारोपण नहीं माना जा सकता, कि बच्चे को जो पढ़ाया गया और बच्चे ने जो सीखा, उसमें भेद है। अगर कहा जा रहा है कि छात्र को सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा दी गई है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षण के प्रतिफल पर कोई टिप्पणी की जा रही है। बच्चे पर मतारोपण किया गया, इसे इस तरह से भी कहा जा सकता है कि बच्चे को वह बिना किसी तार्किक आधार के कुछ विश्वास ढो रहा है। पढ़ाए गए और सीखे गए के बीच जो आवश्यक संबंध है, उसे जानना सीखने वालों ने निषिद्ध मान लिया है। आर. एस. पीटर्स ने एक जगह कहा है कि शिक्षा एक अनिश्चित-सा कार्य व्यापार है क्योंकि इसमें सफलता शिक्षक पर नहीं बल्कि किसी अन्य पर निर्भर करती है।

यह एक पुख्ता आपत्ति है लेकिन यह आपत्ति विवादास्पद प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देने को कहीं से भी न्यायसंगत नहीं ठहराती। ये किसी शैक्षिक लक्ष्य का समर्थन भी नहीं करती और देखा जाए तो यह घातक जरूर है। यह सही हो सकता है कि धार्मिक शिक्षा देने वाले शिक्षक अक्षम हों या उनके छात्र इस कदर जड़बुद्धि हों कि उनके सारे प्रयास धरे के धरे रह जाएं, लेकिन इससे उनका काम न्यायसंगत नहीं हो जाता। वह शिक्षण जिसमें मतारोपण है, और सफल है तो आपत्तिजनक है।

तब इस आपत्ति से निपटने के लिए, हमें अपने तीसरे आधार वाक्य और तर्क के निष्कर्ष में मतारोपण की सफलता की शर्त जोड़ दें। यानी 'सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देना (अगर सफल हैं तो) मतारोपण है।' और इसी तरह 'धार्मिक स्कूल (अगर सफल हैं तो) मतारोपण करते हैं'। हालांकि ये अपने आप में एक कमजोर निष्कर्ष है, लेकिन हमारे फौरी उद्देश्य के लिए पर्याप्त हैं।

दूसरी आपत्ति और ज्यादा विवादास्पद है। इसका संबंध उस मान्यता से है जिसके अनुसार, विश्वासों, मान्यताओं की शिक्षा के मामले में किसी व्यक्ति को सहमत करने का एक मात्र तरीका यह है कि उन मान्यताओं को प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया जाए। मेरा मानना है कि किसी को तार्किक रूप से सहमत करने के लिए निर्णायक प्रमाण देना महज 'एक' तरीका है, एकमात्र तरीका नहीं। दूसरा तरीका वह है जिससे हम सभी ने अपनी ढेर सारी तर्कपूर्ण

मान्यताएं सीखी हैं, यानी मान ली गई बौद्धिक सत्ता।

बौद्धिक सत्ता से आशय यह है कि कोई व्यक्ति जब कुछ कहता है तो वह जानता है कि वह क्या कह रहा है, या कोई ऐसा व्यक्ति जो किसी प्रतिज्ञप्ति के सत्य या असत्य होने के बारे में निर्णय करने में सक्षम हो। कोई भी व्यक्ति यह बौद्धिक सत्ता हासिल कर सकता है अगर वह खुद अवलोकन करे, प्रमाण जुटाए, तर्क खोजे या जरूरी हो तो गणना करके खुद निष्कर्ष पर पहुंचे। इस बात में बहस की गुंजाइश बहुत कम है कि जो कुछ भी हम जानते हैं उसमें से अधिकांश हमें इन बौद्धिक सत्ताओं द्वारा ही मिला है। यहां तक कि हमारी तार्किक मान्यताओं में भी बहुत कम मान्यताओं को ही हमने खुद प्रमाण की कसौटी पर कस कर देखा होगा, बाकी के लिए हम उन सक्षम महानुभावों पर निर्भर करते हैं जो हमारे लिए प्रमाण जुटाते हैं और हमें उनका विश्वास भी दिलाते हैं।

अन्य बातों की समानता रहते हुए भी अगर लोग किसी व्यक्ति को बौद्धिक सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं और वह किसी प्रतिज्ञप्ति को सत्य साबित करता है तो वह इसके लिए तार्किकता का सहारा लेता है। वह प्रतिज्ञप्ति में निहित विश्वास को इस तरह प्रेषित करता है कि वह सुनने वालों को तार्किक लगे। इस क्रम में वह प्रतिज्ञप्ति के बारे में अपने कथनों को तार्किकता की कसौटी पर नहीं कसता। वे आपको प्रमाण देते नहीं बल्कि ये बताते हैं कि उन्होंने प्रमाण देखे हैं। वे प्रमाण को प्रस्तुत करने की बजाए मान लेते हैं। इस आधार पर ग्रहण की गई मान्यताएं और विश्वास तर्क के आधार पर ग्रहण किए माने जाएंगे क्योंकि वे प्रमाणों के आधार पर ग्रहण किए गए हैं और वे सुधार के लिए खुले हैं। (ये संभव है कि मान्यताओं और विश्वासों को ग्रहण करने वाले ने उन प्रमाणों को स्वयं न देखा हो)

अगर मान्यताएं इस विधि से पढ़ाई जा रही हैं तो इसे मतारोपण नहीं कहेंगे। बौद्धिक सत्ता द्वारा बोधन की प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक शक्ति द्वारा अपनाई प्रक्रिया से अलगाना होगा। अगर मैं आपकी बात पर इसलिए विश्वास कर लूं कि मैं आपके व्यक्तित्व से प्रभावित हूं या इसलिए कि बात न मानने के परिणाम मुझे भुगतने होंगे, तो इसका मतलब है कि मुझ पर मतारोपण किया गया। लेकिन अगर मैं आपकी बात इसलिए मान लूं कि मैं आपको एक बौद्धिक सत्ता मानता हूं तो मैं वही कर रहा हूं जो तार्किक रूप से करना चाहिए।

हमारे लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि विवादास्पद विश्वासों की शिक्षा देने वाले शिक्षकों को यह तरीका आता है या नहीं? हम चाहते तो यही हैं कि इसका उत्तर नकारात्मक हो, क्योंकि सिद्धान्ततः वे किसी विवादास्पद विश्वास की सत्यता या असत्यता बताने वाली

बौद्धिक सत्ता नहीं हैं। फिर भी इस तरीके को अपनाने की शर्त यह नहीं है कि इसे अपनाने वाला खुद बौद्धिक सत्ता हो, बल्कि ऐसा भी हो सकता है कि उसे ऐसा मान लिया गया हो। हो सकता है कि मैं गलती से ही किसी को अमुक विषय की बौद्धिक सत्ता मान लूं, लेकिन ऐसा मान लेने के बाद उसकी बात पर विश्वास करना मेरे लिए तर्कसंगत होगा। सिद्धान्ततः मान ली गई बौद्धिक सत्ता द्वारा विवादास्पद विश्वासों की शिक्षा देना किसी भी तरह गलत नहीं है।

तथापि, मैंने कहीं और यह तर्क दिया था कि जो अभिभावक अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं वे मतारोपण के लिए जिम्मेदार नहीं हैं क्योंकि धार्मिक शिक्षा का यही तरीका मात्र उनको उपलब्ध था। छोटे बच्चे स्वाभाविक रूप से अपने माता-पिता को धर्म सहित, हर क्षेत्र में बौद्धिक सत्ता मानते हैं। और जब तक बच्चे ऐसा मानते हैं, अभिभावक इस स्थिति में होते हैं कि वे अपनी धार्मिक मान्यताएं और विश्वास बच्चों को बिना अतार्किक हुए देते रहें। यह संभव है कि धार्मिक पालन-पोषण में और बहुत सारी दिक्कतें हों, लेकिन मतारोपण से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

और यही वह दूसरा कारण है जिसकी वजह से हमारा दूसरा आधार वाक्य जस का तस नहीं रह सकेगा। फिर भी मैं सोचता हूं कि धार्मिक स्कूलों के खिलाफ अपने तर्क को हम इस आपत्ति के मद्देनजर पुनःसृजित कर सकते हैं। सबसे पहले हमें अपने तीसरे आधार वाक्य में एक अपवाद को शामिल करना पड़ेगा। वह यह कि 'सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देना (अगर सफल हैं तो) मतारोपण है सिवाय एक स्थिति के, जिसमें शिक्षक को उन प्रतिज्ञप्तियों के मामले में बौद्धिक सत्ता मान लिया गया हो। और दूसरे, हमें इसमें एक पूरक आधार वाक्य जोड़ना पड़ेगा कि धार्मिक स्कूल उपरोक्त अपवाद की शर्तें पूरी नहीं करते। अब अगर ये नया आधारवाक्य मजबूत है तो धार्मिक स्कूलों के अपने विरोध में दम है।

मैंने दावा किया है कि पूरक आधार वाक्य मजबूत है। अपने शुरुआती वर्षों को छोड़कर बच्चे आमतौर पर शिक्षकों को अपनी धार्मिक जिज्ञासाओं के लिए बौद्धिक सत्ता नहीं मानते। बच्चे यह बहुत जल्दी जान लेते हैं कि कोई भी वैधानिक धार्मिक सत्ता नहीं है, क्योंकि समान रूप से तर्कशील और जानकार लोगों के बीच भी धार्मिक मुद्दों को लेकर मतभेद होते हैं। बच्चे जानते हैं कि उनके शिक्षक इस स्थिति में नहीं होते कि वे धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता को जांचने के लिए निर्णायक प्रमाण प्रस्तुत कर सकें। छात्र शिक्षकों की धार्मिक मान्यताओं का सम्मान कर सकते हैं, उनको धर्म के इतिहास, समाजशास्त्र या दर्शन के विशेषज्ञ के रूप तो देख सकते हैं

पर धर्म के सत्य के मामले में उन्हें विशेषज्ञ नहीं मान सकते। जैसी स्थिति है, उसमें धार्मिक स्कूल मतारोपण किए बगैर प्रशिक्षण दे पाने की शर्तें पूरी नहीं करते।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसी स्थितियां पैदा की जा सकती हैं। लेकिन ऐसा करने के लिए भी मतारोपण करना होगा। जब यह मान चुके हैं कि धार्मिक स्कूलों के शिक्षक धर्म के विशेषज्ञ नहीं हैं, तो ऐसा मनवाने के लिए ऐसे तरीके काम में लेने पड़ेंगे जो तर्कसंगत नहीं हैं। और घरों में धार्मिक पालन-पोषण के पक्ष में तो तर्क ये है कि बच्चे बिना कोई संकेत पाए धार्मिक सत्ता को अपने माता पिता में निहित मान लेते हैं। लेकिन स्कूल में बच्चों को इस बात के लिए राजी करने के लिए जबरदस्त मनोवैज्ञानिक प्रभाव पैदा करना पड़ेगा कि वे अपने शिक्षकों को उसी तरह धार्मिक सत्ता मानें जैसा वे अपने घरों में अपने माता-पिता को मानते हैं।

अंततः मैं कहूंगा कि हमारे तीसरे आधारवाक्य (के मूल रूप) के खिलाफ दो मजबूत आपत्तियां थीं और दोनों का जवाब अपने तर्क में सुधार कर दिया जा सकता है। उसका सुधरा हुआ रूप कुछ ऐसा होगा:-

1. धार्मिक स्कूल धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों में विश्वास पैदा करने के लिए पढ़ाते हैं।
2. कोई भी धार्मिक प्रतिज्ञप्ति सत्य नहीं मानी जाती।
3. **(क)** 'सत्य न मानी जाने वाली प्रतिज्ञप्तियों की शिक्षा देना (अगर सफल हैं तो) मतारोपण है सिवाय एक स्थिति के जिसमें शिक्षक को उन प्रतिज्ञप्तियों के मामले में बौद्धिक सत्ता मान लिया गया हो।
3. **(ख)** धार्मिक स्कूलों में शिक्षकों को धार्मिक प्रतिज्ञप्तियों के लिए बौद्धिक सत्ता नहीं माना जाता।

और इसलिए

4. धार्मिक स्कूल अगर सफल हैं तो मतारोपण करते हैं।

इस तर्क के खिलाफ मुझे कोई आपत्ति नजर नहीं आती। धार्मिक स्कूलों के साथ कोई अन्य गड़बड़ हो या न हो, जैसा कि वे अपने धार्मिक मिशन में सफल हैं, उसे देखकर लगता है कि वे मतारोपण करते हैं। और जब हम देखते हैं कि धार्मिक स्कूलों का धार्मिक मिशन ही उन्हें अन्य स्कूलों से अलगाता है, तो उनमें सुधार की नहीं उनके समूल नाश की जरूरत है। ♦

अनुवाद : अपर्णा